

CHAPTER अठ्ठाशी

वृकासुर से शिवजी की रक्षा

इस अध्याय में बतलाया गया है कि विष्णु के भक्तों को मोक्ष कैसे मिलता है, जबकि अन्य देवताओं के भक्तों को भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

भगवान् विष्णु सर्व ऐश्वर्ययुक्त हैं, किन्तु शिवजी दरिद्रता में रहते हैं। तो भी भगवान् विष्णु के भक्त सामान्यतया दरिद्रता में जीते हैं, जबकि शिव के भक्त प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। जब महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से इस रहस्यमय तथ्य को समझाने के लिए कहा, तो मुनि ने इस प्रकार उत्तर दिया, “शिवजी प्रकृति के तीनों गुणों के अनुसार तीन प्रकार से मिथ्या अहंकार-रूप में प्रकट होते हैं। इस अहंकार से पाँच भौतिक तत्त्व तथा भौतिक प्रकृति के अन्य विकार उत्पन्न होते हैं, जिनकी कुल संख्या सोलह है। जब शिवजी का भक्त इन तत्त्वों में से किसी रूप में उनकी पूजा करता है, तो भक्त को उसी तत्त्व से संगत भोग्य ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। किन्तु श्री हरि प्रकृति के गुणों से अतीत हैं, अतएव उनके भक्त भी दिव्य बन जाते हैं।

अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर राजा युधिष्ठिर ने यही प्रश्न भगवान् कृष्ण से पूछा था, तो उन्होंने उत्तर दिया था, “जब मैं किसी पर विशेष कृपा करता हूँ, तब मैं धीरे धीरे उसको उसकी धन-सम्पदा से वंचित कर देता हूँ, तब उस दरिद्र व्यक्ति के बच्चे, पत्नी तथा अन्य सम्बन्धी उसे छोड़ देते हैं। जब वह अपने परिवार का समर्थन पाने के लिए फिर से सम्पत्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है, तो मैं उस पर दया करके उसे हताश कर देता हूँ, जिससे वह सकाम कर्म से मुख मोड़ लेता है और मेरे भक्तों को मित्र बनाता है। उस समय मैं उस पर असाधारण दया दिखाता हूँ। तब वह भौतिक जीवन के बन्धन से छूट कर भगवद्धाम वैकुण्ठ को प्राप्त कर सकता है।”

ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव में से हर एक वर दे सकते हैं या वरों को देने से इनकार कर सकते हैं, किन्तु ब्रह्मा तथा शिव जल्दी ही प्रसन्न या क्रुद्ध होते हैं, जबकि विष्णु ऐसे नहीं हैं। इस प्रसंग में वैदिक वाङ्मय में निम्नलिखित कथा मिलती है।

एक बार वृकासुर ने नारद से पूछा कि कौन-सा देवता जल्दी प्रसन्न हो जाता है, तो नारद ने उत्तर दिया कि शिवजी। अतः वृकासुर केदारनाथ नामक तीर्थस्थान पर गया और अग्नि में अपने मांस के टुकड़ों की आहुतियाँ देकर शिव की पूजा करने लगा। किन्तु शिवजी प्रकट नहीं हुए। अतएव उसने

अपना सिर काट कर आत्महत्या करने का निश्चय किया। उसी क्षण यज्ञ-अग्नि से शिवजी प्रकट हुए और उसे मनवांछित वर देने को सहमत होकर ऐसा करने से रोका। वृक ने कहा, “मैं जिसके भी सिर पर हाथ रखूँ वह मर जाय।” शिव उसकी विनती पूरी करने पर विवश हो गए। दुष्ट वृक ने तत्क्षण इस वर की परीक्षा भगवान् के ही सिर पर हाथ रख कर करनी चाही। शिवजी अपना जीवन बचाने के लिए भयभीत होकर भागे और भागते हुए वे स्वर्ग तथा मर्त्यलोक की बाह्य सीमाओं तक गये। अन्त में वे श्वेतद्वीप लोक में पहुँचे, जहाँ विष्णुजी का निवास है। दूर से ही हताश शिव को देखकर, उन्होंने एक युवक विद्यार्थी का वेश बना लिया और वृकासुर के समक्ष गये और मधुर वाणी में उसे सम्बोधित किया, “हे वृक! थोड़ा विश्राम करो और हमें बताओ कि तुम क्या करना चाहते हो।” भगवान् के शब्दों से मोहित होकर उसने जो कुछ हुआ था, वह बता दिया। भगवान् ने कहा, “जब से प्रजापति दक्ष ने शिवजी को शाप दिया है, तब से वे मांसभक्षी भूत-प्रेत बन गये हैं। अतः तुम्हें उनके शब्दों पर विश्वास नहीं करना चाहिए। अच्छा हो कि उनके वर की परीक्षा अपने सिरपर हाथ रखकर कर लो।” इन शब्दों से मोहित होकर उस मूर्ख असुर ने, ज्योंही अपना सिर छुआ कि उसका सिर टूक-टूक होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। आकाश से “जय हो” “नमस्कार” तथा “बहुत अच्छा किया” की ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं तथा देवताओं, ऋषियों, दिव्य पूर्वजों तथा गन्धर्वों ने उन पर फूलों की वर्षा करते हुए, उन्हें बधाई दी।

श्रीराजोवाच

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ।

प्रायस्ते धनिनो भोजान तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (परीक्षित) ने कहा; देव—देवताओं; असुर—असुरों; मनुष्येषु—तथा मनुष्यों में से; ये—जो; भजन्ति—पूजा करते हैं; अशिवम्—विरागी; शिवम्—शिव को; प्रायः—सामान्यतया; ते—वे; धनिनः—धनी; भोजानः—इन्द्रिय-तृप्ति के भोक्ता; न—नहीं; तु—फिर भी; लक्ष्म्याः—लक्ष्मी के; पतिम्—पति; हरिम्—भगवान् हरि को।

राजा परीक्षित ने कहा : जो देवता, असुर तथा मनुष्य परम वैरागी शिव की पूजा करते हैं, वे सामान्यतया धन सम्पदा तथा इन्द्रिय-तृप्ति का आनन्द लूटते हैं, जबकि लक्ष्मीपति भगवान् हरि की पूजा करने वाले, ऐसा नहीं कर पाते।

एतद्वेदितुमिच्छामः सन्देहोऽत्र महान् हि नः ।

विरुद्धशीलयोः प्रभवोर्विरुद्धा भजतां गतिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; वेदितुम्—जानने के लिए; इच्छामः—इच्छुक हूँ; सन्देहः—सन्देह; अत्र—इस मामले में; महान्—महान्; हि—निस्सन्देह; नः—हम पर से; विरुद्ध—उल्टा; शीलयोः—जिनके चरित्र; प्रभवोः—दोनों प्रभुओं के; विरुद्धा—विपरीत; भजताम्—पूजा करने वालों का; गतिः—गन्तव्य ।

हम इस विषय को ठीक से समझना चाहते हैं, क्योंकि यह हमें अत्यधिक परेशान किये हुए है। दरअसल इन विपरीत चरित्रों वाले दोनों प्रभुओं की पूजा करने वालों को, जो फल मिलते हैं, वे अपेक्षा के विपरीत होते हैं।

तात्पर्य : पिछले अध्याय की समाप्ति इस संस्तुति के साथ हुई है कि हर एक को चाहिए कि मुक्तिदाता भगवान् हरि का ध्यान करे। इस सम्बन्ध में महाराज परीक्षित ने सामान्य जनों में व्याप्त एक सामान्य भय को व्यक्त किया है कि भगवान् विष्णु का भक्त बनने से मनुष्य सम्पत्ति तथा सामाजिक पद से हाथ धो बैठेगा। अतः अल्प श्रद्धा वाले ऐसे व्यक्तियों के लाभ के लिए राजा परीक्षित श्रील शुकदेव गोस्वामी से इस विरोधाभास को बतलाने की प्रार्थना करते हैं: भिक्षुक की तरह बिन अपने घर के रहने वाले शिव अपने भक्तों को धनी तथा शक्तिवान बना देते हैं, जबकि सर्वस्व अधिपति भगवान् विष्णु अपने सेवक को दरिद्रता के द्वार तक पहुँचा देते हैं। इसका उत्तर शुकदेव गोस्वामी तर्कपूर्ण व्याख्या सहित और वृक असुर का प्राचीन वृत्तान्त प्रस्तुत करके देंगे।

श्रीशुक उवाच

शिवः शक्तियुतः शश्वत्त्रिलिङ्गो गुणसंवृतः ।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुक ने कहा; शिवः—शिव; शक्ति—अपनी भौतिक शक्ति, प्रकृति से; यतः—युक्त; शश्वत्—सदैव; त्रि—तीन; लिङ्गः—प्रकट स्वरूप वाले; गुण—गुणों से; संवृतः—अनुरोध किये गये; वैकारिकः—सतोगुणी अहंकार; तैजसः—रजोगुणी अहंकार; च—तथा; तामसः—तमोगुणी अहंकार; च—तथा; इति—इस प्रकार; अहम्—अहंकार का तत्त्व; त्रिधा—तीन गुना ।

श्रीशुकदेव ने कहा : शिवजी सदैव अपनी निजी शक्ति, प्रकृति के साथ, संयुक्त रहते हैं। प्रकृति के तीन गुणों के अनुरोध पर अपने को तीन रूपों में प्रकट करते हुए वे सतो, रजो तथा तमोगुणी अहंकार के त्रितत्त्व को धारण करने वाले हैं।

ततो विकारा अभवन्षोडशामीषु कञ्चन ।
उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस (अहंकार) से; विकाराः—रूपान्तरेण; अभवन्—प्रकट हुए; षोडश—सोलह; अमीषु—इनमें से; कञ्चन—कोई; उपधावन्—पूजा करते हुए; विभूतीनाम्—भौतिक सम्पत्ति का; सर्वासाम्—समस्त; अश्नुते—भोग करता है; गतिम्—उपलब्धि।

उसी मिथ्या अहंकार से सोलह तत्त्व विकार-रूप में निकले हैं। जब शिव-भक्त इन तत्त्वों में से किसी भी विकार की पूजा करता है, तो उसे सभी प्रकार का उसी तत्त्व के संगत भोग्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

तात्पर्य : मिथ्या अहंकार के सोलह विकार हैं—मन, दस इन्द्रियाँ (आँखें, कान, नाक, जीभ, चर्म, हाथ, पाँव, वाणी, जननांग तथा गुदा) एवं पाँच भौतिक तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश)। शिवजी इन सोलहों वस्तुओं में से हर एक में एक विशेष लिंग रूप में प्रकट होते हैं, जो ब्रह्माण्ड के विभिन्न पवित्र स्थानों में अर्चाविग्रहों के रूप में पूजे जाते हैं। शिव-भक्त इनमें से किसी विशेष लिंग की पूजा करके तत्सम्बन्धी ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है। जैसे कि शिवजी का आकाशलिंग आकाश का ऐश्वर्य प्रदान करता है और उनका ज्योतिर्लिंग अग्नि का ऐश्वर्य प्रदान करता है इत्यादि।

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ।
स सर्वद्रुगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

हरिः—भगवान् हरि; हि—निस्सन्देह; निर्गुणः—गुणों से अछूता; साक्षात्—परम रूप से; पुरुषः—ईश्वर; प्रकृतेः—प्रकृति के; परः—दिव्य; सः—वह; सर्व—हर वस्तु; दृक्—देखते हुए; उपद्रष्टा—साक्षी; तम्—उसकी; भजन्—पूजा करके; निर्गुणः—भौतिक गुणों से मुक्त; भवेत्—बन जाता है।

किन्तु भगवान् हरि का भौतिक गुणों से कोई सरोकार नहीं रहता। वे सर्वद्रष्टा नित्य साक्षी भगवान् हैं, जो भौतिक प्रकृति के परे हैं। जो उनकी पूजा करता है, वह भी उन्हीं की तरह भौतिक गुणों से मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु भौतिक शक्ति से परे अपने दिव्य पद पर स्थित हैं। तो फिर उनकी पूजा से भौतिक ऐश्वर्य का फल किस तरह मिलता है? भगवान् विष्णु की पूजा करने का असली फल दिव्य ज्ञान है। इस तरह विष्णु का पूजक भौतिक सम्पत्ति से अंधा होने की बजाय दिव्य ज्ञान-चक्षु प्राप्त

करता है। भगवान् भौतिक सृष्टि के एक विरक्त साक्षी हैं, इसलिए उनका भक्त भी भगवान् की कनिष्ठा शक्तियों की अन्योन्य क्रिया से पृथक् रहता है।

श्रील श्रीधर स्वामी ने वैदिक साहित्य से निम्नलिखित उद्धरण दिये हैं—

वस्तुनो गुणसम्बन्धे रूपद्वयमिहेष्यते ।

तद्धर्मयोगयोगाभ्यां बिम्बवत् प्रतिबिम्बवत् ॥

“जब परम सत्य प्रकृति के गुणों के साथ रहता है, तो भगवान् इस जगत में दो भिन्न प्रकार के रूप धारण करते हैं, जिनका आधार इस बात पर होता है कि उनके दिव्य गुण प्रकट हैं अथवा नहीं। इस तरह वे प्रतिबिम्ब और फिर उसके भी प्रतिबिम्ब की तरह कार्य करते हैं।”

गुणाः सत्त्वादयः शान्तघोरमूढाः स्वभावतः ।

विष्णुब्रह्मशिवानां च गुणयन्तृस्वरूपिणाम् ॥

“सतो, रजो तथा तमोगुण जिनके स्वभाव क्रमशः शान्त, उद्धत तथा मूर्ख हैं, स्वयं विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव द्वारा नियमित होते हैं।”

नातिभेदो भवेद् भेदो गुणधर्मैरिहांशतः ।

सत्त्वस्य शान्त्या नो जातु विष्णोर्विक्षेपमूढते ॥

“विष्णु का शान्त सतोगुण उनके आदि आध्यात्मिक गुणों से कुछ विशेष मात्रा में भिन्न नहीं होता, यद्यपि इस जगत में यह उनकी आंशिक अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार भगवान् विष्णु का सतोगुण कभी भी क्षोभ (रजोगुण में) या मोह (तमोगुण में) से कलुषित नहीं होता।”

रजस्तमोगुणाभ्यां तु भवेतां ब्रह्मरुद्रयोः ।

गुणोपमर्दतो भूयस्तदंशानां च भिन्नता ॥

“दूसरी ओर रजो तथा तमोगुण से ब्रह्मा तथा रुद्र के आदि आध्यात्मिक गुण छिप जाते हैं। इस तरह ये आध्यात्मिक गुण, अंशतः पृथक्, भौतिक गुणों के रूप में प्रकट होते हैं।”

अतः समग्रसत्त्वस्य विष्णोर्मोक्षकरी मतिः ।

अंशतो भूतिहेतुश्च तथानन्दमयी स्वतः ॥

“इसलिए समस्त सत्त्व के रूप भगवान् विष्णु पर चेतना को केन्द्रित करने से मुक्ति प्राप्त होती है।

ऐसी ईश-चेतना से उपजात के रूप में भौतिक सफलता भी उत्पन्न होती है, किन्तु इसकी सही प्रकृति शुद्ध आध्यात्मिक आनन्द है।”

अंशतस्तारतम्येन ब्रह्मरुद्रादिसेविनाम् ।

विभूतयो भवन्त्येव शनैर्मोक्षोऽप्यनंशतः ॥

“ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य देवताओं के भक्त अपनी पूजा के गुण के अनुसार भौतिक ऐश्वर्य की सीमित सफलता प्राप्त करते हैं। अन्ततः वे संभवतः पूर्ण मुक्ति के पात्र बन सकते हैं।”

यही भाव श्रीमद्भागवत के इस कथन (१.२.२३) से ध्वनित होता है—श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः—इन तीनों (ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव) में से सारे मनुष्य चरम लाभ विष्णु से पा सकते हैं, जो सतो गुण स्वरूप हैं।”

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः ।

शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

निवृत्तेषु—पूर्ण हुए; अश्व-मेधेषु—अश्वमेध यज्ञ के; राजा—राजा (युधिष्ठिर); युष्मत्—तुम्हारे (परीक्षित के); पितामहाः—बाबा; शृण्वन्—सुनते हुए; भगवतः—भगवान् (श्रीकृष्ण) से; धर्मान्—धार्मिक सिद्धान्तों को; अपृच्छत्—पूछा; इदम्—यह; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण से।

तुम्हारे बाबा राजा युधिष्ठिर ने अपना अश्वमेध यज्ञ पूरा कर लेने के बाद भगवान् अच्युत से यही प्रश्न पूछा था, जब वे भगवान् से धर्म की व्याख्या सुन रहे थे।

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः ।

नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; आह—कहा; भगवान्—भगवान्; तस्मै—उसको; प्रीतः—प्रसन्न; शुश्रूषवे—सुनने का इच्छुक; प्रभुः—स्वामी; नृणाम्—सारे मनुष्यों के; निःश्रेयस—चरम लाभ के; अर्थाय—हेतु; यः—जो; अवतीर्णः—अवतरित; यदोः—राजा यदु के; कुले—वंश में।

राजा के स्वामी तथा प्रभु श्रीकृष्ण, जो सारे लोगों को परम लाभ प्रदान करने के उद्देश्य से यदुकुल में अवतीर्ण हुए थे, इस प्रश्न से प्रसन्न हुए। भगवान् ने निम्नवत् उत्तर दिया, जिसे राजा ने उत्सुकतापूर्वक सुना।

श्रीभगवानुवाच

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः ।

ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; यस्य—जिस पर; अहम्—मैं; अनुगृह्णामि—अनुग्रह करता हूँ; हरिष्ये—हरण कर लेता हूँ; तत्—उसका; धनम्—धन; शनैः—धीरे धीरे; ततः—तब; अधनम्—निर्धन; त्यजन्ति—छोड़ देते हैं; अस्य—उसके; स्व-जनाः—सम्बन्धी तथा मित्र; दुःख-दुःखितम्—एक के बाद, एक दुख से दुखी।

भगवान् ने कहा : यदि मैं किसी पर विशेष रूप से कृपा करता हूँ, तो मैं धीरे धीरे उसे उसके धन से वंचित करता जाता हूँ। तब ऐसे निर्धन व्यक्ति के स्वजन तथा मित्र उसका परित्याग कर देते हैं। इस प्रकार वह कष्ट पर कष्ट सहता है।

तात्पर्य : भगवद्भक्तों को सुख तथा दुख दोनों का अनुभव करना पड़ता है—इसलिए नहीं कि ये भौतिक कर्म के फल हैं, अपितु भगवान् से प्रेम करने के आपादकालिक प्रतिफल होते हैं। श्रील रूप गोस्वामी ने श्री भक्तिरसामृतसिन्धु में जो उनका भक्ति-प्रक्रिया पर पारिभाषिक शोध-प्रबंध है, बतलाया है कि किस तरह एक वैष्णव सारे कर्मफलों से छूट जाता है—इन फलों में अप्रारब्ध—(जो अभी प्रकट नहीं हुए); कूट (जो प्रारम्भ होने वाले हैं), बीज (जो प्रकट हो रहे होते हैं) तथा प्रारब्ध (जो पूरी तरह से प्रकट हो चुके हैं) सम्मिलित हैं। जिस प्रकार कमल की पंखुड़ियाँ धीरे धीरे गिर जाती हैं, उसी तरह भक्ति का आश्रय लिये व्यक्ति के सारे कर्मफल विनष्ट होते जाते हैं।

गोपालतापनी श्रुति (पूर्व १५) के निम्नलिखित गद्यांश से भी इसकी पुष्टि होती है कि भगवान् कृष्ण की भक्ति से सारे कर्मफल समूल नष्ट हो जाते हैं—भक्तिरस्य भजनं तदिहामुत्रोपाधिनैरास्येनामुष्मिन् मनःकल्पनम् एतदेव नैकष्कर्म्मम्—“भक्ति भगवान् की पूजा करने की विधि है। इसमें सारी भौतिक उपाधियों से, चाहे वे इस जन्म में हों या अगले जन्म में, विरक्त होकर उन पर ध्यान एकाग्र करना होता है। इससे सारे कर्मों का विलय हो जाता है।” यह सच है कि जो भक्ति करते हैं, वे कुछ काल तक इस भौतिक शरीर में और भौतिक स्थितियों में रहते हैं, किन्तु यह भगवान् की अचिन्त्य दया की अभिव्यक्ति मात्र है और उन्हें केवल शुद्ध होने पर भक्ति का फल मिलता है। किन्तु भक्ति की प्रत्येक अवस्था में भगवान् अपने भक्त पर नजर रखते हैं और देखते हैं कि उसके कर्म का धीरे धीरे निरसन होता रहे। इस तथ्य के बावजूद कि भक्त जिस सुख-दुख का अनुभव करते हैं वह सामान्य कर्मफलों के समान ही होता है, किन्तु इन्हें देने वाले स्वयं भगवान् होते हैं। जैसाकि

भागवत (१०.८७.४०) में कहा गया है— भवदुत्थ शुभाशुभयोः—प्रौढ भक्त जानता है कि बाहर से दिखने वाली अच्छी तथा बुरी परिस्थितियाँ जिन्हें वह झेल रहा है उसके शुभेच्छु भगवान् के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन के संकेत हैं।

किन्तु यदि भगवान् अपने भक्तों के प्रति दयालु हैं, तो वे उन्हें विशेष कष्ट क्यों देते हैं? इसका उत्तर एक दृष्टान्त द्वारा दिया जा रहा है। एक अत्यन्त स्नेही पिता अपने बच्चों को खेलने से रोक कर उन्हें पढ़ने के लिए पाठशाला भेजने का उत्तरदायित्व लेता है। वह जानता है कि बच्चों के प्रति यह सही प्रेम की अभिव्यक्ति है भले ही बच्चे इसे न समझ पायें। इसी तरह से भगवान् विष्णु अपने सभी भक्तों पर दयापूर्ण होते हुए भी कठोर हैं केवल अप्रौढ भक्तों पर नहीं जो अभी योग्य बनने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं। यहाँ तक कि प्रह्लाद, ध्रुव तथा युधिष्ठिर जैसे पूर्ण सन्तों को महान् कष्ट झेलने पड़े और यह सब उन्हीं के गौरव हेतु था। कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद श्री भीष्मदेव ने इस पर राजा युधिष्ठिर से अपना आश्चर्य व्यक्त किया—

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ।

कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत् कृष्णस्ततो विपत् ॥

न ह्यस्य कर्हिचिद् राजन् पुमान् वेत्ति विधित्सितम् ।

यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ॥

“ओह! अपरिहार्य काल का प्रभाव कितना विचित्र है। यह अनुर्कमणीय है अन्यथा धर्मसुत राजा युधिष्ठिर, गदाधारी भीम, गाण्डीवधारी महान् योद्धा अर्जुन तथा इन सबों के ऊपर पाण्डवों के परम शुभचिन्तक भगवान् की उपस्थिति में ऐसी विपदाएँ क्यों आतीं? हे राजन्! कोई भी भगवान् (कृष्ण) की योजना को नहीं जान सकता। यद्यपि बड़े बड़े दार्शनिक पूर्ण जिज्ञासा करते हैं, किन्तु वे भी मोहग्रस्त हो जाते हैं।” (भागवत १.९.१५-१६)

यद्यपि वैष्णव के सुख तथा दुख सामान्य कर्मफलों जैसे अनुभव किये जाते हैं, किन्तु एक महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोण से वे पृथक् होते हैं। कर्म से उत्पन्न भौतिक सुख तथा दुख एक सूक्ष्म अवशेष छोड़ जाते हैं—जो भावी बन्धन का बीज बनता है। ऐसे सुख तथा दुख से पतन होने की सम्भावना रहती है तथा नरक में जाने का खतरा बढ़ जाता है। किन्तु भगवान् की इच्छाओं से उत्पन्न सुख तथा

दुख अपना तात्कालिक उद्देश्य पूरा हो जाने के पश्चात् ऐसा कोई अवशेष नहीं छोड़ते। यही नहीं, जो वैष्णव भगवान् के साथ ऐसा आदान-प्रदान करता है, उसे अज्ञान में गिरने का खतरा नहीं रहता। जैसाकि मृत्यु के देवता एवं सभी मृत-जीवों के निर्णायक यमराज ने कहा है—

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयम्

चेतश्च न स्मरति तच्चरणाविन्दम् ।

कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि

तान् आनयध्वम् असतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥

“मेरे सेवको! तुम मेरे पास केवल उन्हीं पापी व्यक्तियों को लाओ जो अपनी जीभों का प्रयोग कृष्ण के पवित्र नाम तथा गुणों का कीर्तन करने के लिए न करते हों, जिनके हृदय एक बार भी कृष्ण के चरणकमलों का स्मरण न करते हों और जिनके सिर एक बार भी कृष्ण के समक्ष न झुकते हों। मेरे पास केवल उनको भेजो जो विष्णु के प्रति अपना कर्तव्य नहीं निभाते, जो मनुष्य-जीवन का एकमात्र कर्तव्य है। मेरे पास ऐसे सारे मूर्खों तथा धूर्तों को लाओ।” (*भागवत* ६.३.२९) ।

भगवान् के प्रिय भक्तगण अपने ऊपर भगवान् द्वारा लादे गये कष्टों को अत्यन्त दुखदायी नहीं मानते। वे देखते हैं कि अन्त में इनसे उन्हें असीम आनन्द प्राप्त होता है, जिस तरह वैद्य द्वारा अपने रोगी की दुखती आँख में लगाया गया कडुआ लेप उसके कष्ट को दूर कर देता है। कष्ट से भक्ति की गुह्यता की रक्षा होती है, क्योंकि श्रद्धाविहीन लोग इसके भीतर प्रवेश करने का साहस नहीं कर पाते और इससे वह उत्सुकता बढ़ती है, जिससे भक्तगण भगवान् को प्रकट होने के लिए पुकारते हैं। यदि भगवान् विष्णु के भक्त संतुष्ट होकर सदैव सुखी रहते, तो उन्हें कृष्ण, रामचन्द्र, नृसिंह आदि के रूप में इस जगत में प्रकट होने की जरूरत ही न पड़ती। जैसाकि *भगवद्गीता* (४.८) में स्वयं कृष्ण कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

“साधुओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का संहार करने एवं धर्म की पुनः स्थापना करने के लिए मैं युग युग में प्रकट होता हूँ।” यदि भगवान् अपने मूल कृष्ण-रूप में तथा विविध अवतारों के रूप में

अपने को न दिखलायें, तो इस जगत में उनके श्रद्धालु सेवकों को उनकी रासलीला तथा अन्य लीलाओं का आनन्द लेने का अवसर ही प्राप्त न हो सके।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यहाँ एक सम्भावित आपत्ति प्रस्तुत करते हैं, “यदि ईश्वर सन्त-पुरुषों को कष्टों से उबारने के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से अवतार लें, तो उसमें कौन-सा हर्ज होगा?” विद्वान् आचार्य इसका उत्तर देते हैं, “हाँ, भाइयो! यह ठीक तो है, लेकिन तुम लोग आध्यात्मिक रस समझने में दक्ष नहीं हो। तो सुनो: रात में ही सूर्योदय आकर्षक लगता है, ग्रीष्म की गर्मी में ही शीतल जल सुख देता है और जाड़े के शीतकाल में ही गर्म जल सुहाता है। दीपक का प्रकाश अँधेरे में आकर्षक लगता है, दिन के तेज प्रकाश में नहीं और जब किसी को भूख लगी होती है, तो भोजन विशेष तौर से अच्छा लगता है।” दूसरे शब्दों में, अपने भक्तों के उन पर आश्रित रहने के भाव को तथा प्रेम को दृढ़ करने के लिए ही भगवान् भक्तों को कुछ कष्ट देते हैं और जब वे उनका उद्धार करने के लिए प्रकट होते हैं, तो उनकी कृतज्ञता तथा उनका दिव्य आनन्द असीम होता है।

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया ।

मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; यदा—जब; वितथ—व्यर्थ; उद्योगः—प्रयास; निर्विण्णः—विफल; स्यात्—हो जाता है; धन—धन के लिए; ईहया—अपने प्रयास से; मत्—मेरे; परैः—भक्तों के साथ; कृत—बनाने वाले के लिए; मैत्रस्य—मित्रता; करिष्ये—दिखलाऊँगा; मत्—मेरी; अनुग्रहम्—कृपा।

जब वह धन कमाने के अपने प्रयासों में विफल होकर मेरे भक्तों को अपना मित्र बनाता है, तो मैं उस पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करता हूँ।

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् ।

विज्ञायात्मतया धीरः संसारात्परिमुच्यते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; ब्रह्म—निर्विशेष ब्रह्म; परमम्—परम; सूक्ष्मम्—सूक्ष्म; चित्—आत्मा; मात्रम्—शुद्ध; सत्—नित्य जगत; अनन्तकम्—अन्तहीन; विज्ञाय—भलीभाँति जान कर; आत्मतया—अपने ही आत्मा के रूप में; धीरः—धीर; संसारात्—भौतिक जीवन से; परिमुच्यते—छूट जाता है।

इस तरह धीर बना हुआ व्यक्ति ब्रह्म को, जो आत्मा की सर्वाधिक सूक्ष्म तथा पूर्ण अभिव्यक्ति से एवं अन्तहीन जगत से परे है, सर्वोच्च सत्य के रूप में पूरी तरह से अनुभव करता

है। इस तरह यह अनुभव करते हुए कि परम सत्य उसके अपने अस्तित्व का आधार है, वह भौतिक जीवन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

अतो मां सुदुराराध्यं हित्वान्यान्भजते जनः ।
ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोद्धताः ।
मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मयन्त्यवजानते ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अतः—इसलिए; माम्—मुझको; सु—अत्यन्त; दुराराध्यम्—पूजा करने में कठिन; हित्वा—छोड़ कर; अन्यान्—अन्यों को; भजते—पूजा करता है; जनः—सामान्य व्यक्ति; ततः—फलस्वरूप; ते—वे; आशु—शीघ्र ही; तोषेभ्यः—संतुष्ट लोगों से; लब्ध—प्राप्त; राज्य—राजसी; श्रिया—ऐश्वर्य से; उद्धताः—उद्धत बनाये गये; मत्ताः—मद से चूर; प्रमत्ताः—परवाह न करने वाले; वर—वरों के; दान्—दाता; विस्मयन्ति—अत्यन्त निडर बन कर; अवजानते—अपमान (तिरस्कार) करते हैं।

चूँकि मुझे पूजा कठिन है, इसलिए सामान्यतया लोग मुझसे कतराते हैं और बजाय इसके मैं उन अन्य देवों की पूजा करते हैं, जो शीघ्र ही तुष्ट हो जाते हैं। जब लोग इन देवों से राजसी ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं, तो वे उद्धत, गर्वोन्मत्त तथा अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करने वाले बन जाते हैं। वे उन देवताओं को भी अपमानित करने का दुस्साहस करते हैं, जिन्होंने उन्हें वर दिये हैं।

श्रीशुक उवाच

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; शाप—शाप देने; प्रसादयोः—दया दिखाने में; ईशाः—समर्थ; ब्रह्म-विष्णु-शिव-आदयः—ब्रह्मा, विष्णु, शिव इत्यादि; सद्यः—शीघ्र; शाप-प्रसादः—जिनके शाप तथा वरदान; अङ्ग—हे प्रिय (राजा परीक्षित); शिवः—शिव; ब्रह्मा—ब्रह्मा; न—नहीं; च—तथा; अच्युतः—भगवान् विष्णु।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देवता किसी को शाप या आशीर्वाद देने में समर्थ हैं। शिव तथा ब्रह्मा शाप देने या वर देने में बहुत शीघ्रता करते हैं, किन्तु हे राजन्, भगवान् अच्युत ऐसे नहीं हैं।

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाप सङ्कटम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस सम्बन्ध में; च—तथा; उदाहरन्ति—उदाहरण के रूप में बतलाते हैं; इमम्—यह (आगे दिया); इतिहासम्—ऐतिहासिक विवरण; पुरातनम्—प्राचीन; वृक-असुराय—वृक असुर के लिए; गिरि-शः—कैलाश पर्वत के स्वामी शिवजी ने; वरम्—वर; दत्त्वा—देकर; आप—प्राप्त किया; सङ्कटम्—भयावह स्थिति।

इस सम्बन्ध में एक प्राचीन ऐतिहासिक विवरण बतलाया जाता है कि किस तरह वृक असुर को वर माँगने के लिए कहने से कैलाश पर्वत के स्वामी संकट में पड़ गये।

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् ।
दृष्ट्वाशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

वृकः—वृक; नाम—नामक; असुरः—असुर; पुत्रः—पुत्र; शकुनेः—शकुनि का; पथि—मार्ग में; नारदम्—नारद मुनि को; दृष्ट्वा—देख कर; आशु—शीघ्र; तोषम्—प्रसन्न होने वाला; पप्रच्छ—पूछा; देवेषु—देवताओं में से; त्रिषु—तीन; दुर्मतिः—दुष्ट ने।

एक बार मार्ग में शकुनि-पुत्र वृक नामक असुर की नारद से भेंट हो गयी। इस दुष्ट ने उनसे पूछा कि तीन प्रमुख देवों में से, किसे सबसे जल्दी प्रसन्न किया जा सकता है।

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिद्धयसि ।
योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने (नारद ने); आह—कहा; देवम्—देव; गिरिशम्—शिव को; उपाधाव—पूजा; आशु—शीघ्र; सिद्धयसि—सफल होगे; यः—जो; अल्पाभ्याम्—कुछ; गुण—उत्तम गुणों से; दोषाभ्याम्—तथा दोषों से; आशु—जल्दी; तुष्यति—तुष्ट होता है; कुप्यति—क्रुद्ध होता है।

नारद ने उससे कहा : तुम शिव की पूजा करो, तो तुम्हें शीघ्र ही सफलता प्राप्त हो सकेगी। वे अपनी पूजा करने वालों के रंचमात्र भी उत्तम गुणों को देख कर तुरन्त प्रसन्न हो जाते हैं और उनकी रंचमात्र भी त्रुटि देख कर तुरन्त कुपित होते हैं।

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्वन्दिनोरिव ।
ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसङ्कटम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

दश-आस्य—दस सिरों वाले रावण से; बाणयोः—तथा बाण से; तुष्टः—संतुष्ट; स्तुवतोः—उनकी स्तुति का गान करने वाले; वन्दिनोः इव—गायकों की तरह; ऐश्वर्यम्—शक्ति; अतुलम्—अद्वितीय; दत्त्वा—देकर; ततः—तब; आप—प्राप्त किया; सु—महान्; सङ्कटम्—विपत्ति।

वे दस-सिर वाले रावण से तथा बाण से तब प्रसन्न हो उठे, जब उनमें से प्रत्येक ने राज्य दरबार के वन्दीजनों की तरह उनके यश का गायन किया। तब शिवजी ने उन दोनों को अभूतपूर्व शक्ति प्रदान की, किन्तु इसके फलस्वरूप, उन्हें दोनों के कारण महान् संकट उठाना पड़ा।

तात्पर्य : रावण ने शक्ति प्राप्त करने के लिए शिवजी की पूजा की और तब इस शक्ति का दुरुपयोग शिवजी के ही आवास पवित्र कैलाश पर्वत को नष्ट करने में किया। बाणासुर की याचना पर शिवजी बाण की राजधानी की रखवाली स्वयं करने के लिए राजी हो गये किन्तु बाद में उन्हें बाण के लिए श्रीकृष्ण तथा उनके पुत्रों से युद्ध करना पड़ा।

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः ।

केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानो गिनमुखं हरम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; आदिष्टः—आदेश दिया गया; तम्—उस (शिव) की; असुरः—असुर ने; उपाधावत्—पूजा की; स्व—अपने; गात्रतः—शरीर के अंगों से; केदारो—केदारनाथ नामक पवित्र स्थान पर; आत्म—अपने; क्रव्येण—मांस से; जुह्वानः—आहुतियाँ देते हुए; अग्नि—अग्नि रूपी; मुखम्—मुख में; हरम्—शिव के।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस प्रकार उपदेश पाकर, वह असुर केदारनाथ में शिवजी की पूजा करने गया, जहाँ वह अपने शरीर से मांस के टुकड़े काट-काट कर पवित्र अग्नि में, जो कि शिवमुख है, आहुतियाँ देने लगा।

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि ।

शिरोऽवृश्चत्सुधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥ १८ ॥

तदा महाकारुणिको स धूर्जटि-

यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ।

निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्

तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

देव—देवता का; उपलब्धिम्—दर्शन; अप्राप्य—न पाकर; निर्वेदात्—हताशा से; सप्तमे—सातवें; अहनि—दिन; शिरः—सिर; अवृश्चत्—काटने वाला था; सुधितिना—कुल्हाड़े से; तत्—उस (केदारनाथ) का; तीर्थ—तीर्थस्थान (के जल) में; क्लिन्न—सिक्त; मूर्ध-जम्—सिर के बाल; तदा—तब; महा—परम; कारुणिकः—दयालु; सः—वह; धूर्जटिः—शिवजी; यथा—जिस तरह; वयम्—हम; च—भी; अग्निः—अग्नि देव; इव—की तरह प्रकट होकर; उत्थितः—उठा हुआ; अनलात्—अग्नि से; निगृह्य—पकड़ कर; दोर्भ्याम्—अपनी बाँहों से; भुजयोः—उसकी (वृक की) बाँहें; न्यवारयत्—रोका; तत्—उसका (शिव का); स्पर्शनात्—स्पर्श से; भूयः—पुनः; उपस्कृत—सुनिर्मित; आकृतिः—शरीर।

देवता का दर्शन न पाकर वृकासुर हताश हो गया। अन्त में सातवें दिन केदारनाथ की पवित्र नदी में अपने बाल भिगोकर तथा उन्हें गीला ही रहने देकर, उसने एक कुल्हाड़ा उठाया और अपना सिर काटने लगा। लेकिन उसी क्षण परम दयालु शिवजी यज्ञ-अग्नि से प्रकट हुए, जो साक्षात् अग्नि देव जैसे लग रहे थे। उन्होंने असुर को आत्महत्या करने से रोकने के लिए उसकी

दोनों बाँहें पकड़ लीं, जिस तरह ऐसी परिस्थिति में हम करेंगे। शिवजी का स्पर्श करने से वृकासुर, एक बार फिर पूर्ण हो गया।

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे
यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यता-
महो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तम्—उससे; आह—(शिव ने) कहा; च—तथा; अङ्ग—हे प्रिय; अलम् अलम्—बस बस; वृणीष्व—वर माँगो; मे—मुझसे; यथा—जैसा; अभिकामम्—चाहते हो; वितरामि—प्रदान करूँगा; ते—तुम्हें; वरम्—तुम्हारा चुना वर; प्रीयेय—प्रसन्न होता हूँ; तोयेन—जल से; नृणाम्—मनुष्यों के; प्रपद्यताम्—शरणागत; अहो—ओह; त्वया—तुम्हारे द्वारा; आत्मा—तुम्हारा शरीर; भृशम्—अत्यधिक; अर्द्यते—पीड़ा पहुँचाया गया; वृथा—व्यर्थ।

शिवजी ने उससे कहा : हे मित्र, बस करो, बस करो, तुम जो भी चाहो, मुझसे माँगो। मैं तुम्हें वही वर दूँगा। हाय! तुमने वृथा ही अपने शरीर को इतनी पीड़ा पहुँचाई, क्योंकि जो लोग शरण के लिए मेरे पास पहुँचते हैं, उनके द्वारा मात्र जल की भेंट से मैं प्रसन्न हो जाता हूँ।

देवं स वद्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् ।
यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

देवम्—देव से; सः—उसने; वद्रे—माँगा; पापीयान्—पापी असुर; वरम्—वर; भूत—सारे जीवों को; भय—डर; आवहम्—लाने वाला; यस्य यस्य—जिस जिसके; करम्—हाथ; शीर्ष्णि—सिर पर; धास्ये—मैं रखूँ; सः—वह; म्रियताम्—मर जाये; इति—इस प्रकार।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : उस पापी वृक ने भगवान् से जो वर माँगा, वह सारे जीवों को भयाकान्त करने वाला था। वृक ने कहा, “मैं जिसके भी सिर पर अपना हाथ रखूँ, उसकी मृत्यु हो जाये।”

तच्छ्रुत्वा भगवान् रुद्रो दुर्मना इव भारत ।
ॐ इति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह; श्रुत्वा—सुनकर; भगवान् रुद्रः—भगवान् रुद्र ने; दुर्मनाः—अप्रसन्न; इव—मानो; भारत—हे भरतवंशी; ॐ इति—स्वीकृति के रूप में ॐ शब्द का उच्चारण करते हुए; प्रहसन्—हँसते हुए; तस्मै—उसे; ददे—दे दिया; अहेः—साँप को; अमृतम्—अमृत; यथा—जिस तरह।

यह सुनकर भगवान् रुद्र कुछ विचलित से लगे। फिर भी हे भारत, उन्होंने अपनी सहमति

दिखाने के लिए ॐ का उच्चारण किया और व्यंग्य-हँसी के साथ वृक को वर दे दिया कि, मानो विषैले सर्प को दूध दे दिया हो।

स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः ।

स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; तत्—उसके (शिव के); वर—वरदान की; परीक्षा-अर्थम्—परीक्षा लेने के लिए; शम्भोः—शिवजी के; मूर्ध्नि—सिर पर; किल—निस्सन्देह; असुरः—असुर ने; स्व—अपना; हस्तम्—हाथ; धातुम्—रखने के लिए; आरेभे—प्रयत्न किया; सः—उसने; अबिभ्यत्—डर गया; स्व—अपने द्वारा; कृतात्—किये हुए से; शिवः—शिव।

भगवान् शम्भु के वर की परीक्षा करने के लिए असुर ने उन्हीं के सिर पर हाथ रखने का प्रयास किया। तब शिवजी को अपने किये हुए पर भय लगने लगा।

तेनोपसृष्टः सन्त्रस्तः पराधावन्सवेपथुः ।

यावदन्तं दिवो भूमेः कष्टानामुदगादुदक् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तेन—उसके द्वारा; उपसृष्टः—पीछा किया जाते; सन्त्रस्तः—भयभीत; पराधावन्—दौड़ते हुए; स—सहित; वेपथुः—काँपते हुए; यावत्—जहाँ तक; अन्तम्—छोर; दिवः—आकाश का; भूमेः—पृथ्वी का; कष्टानाम्—तथा दिशाओं का; उदगात्—तेजी से गया; उदक्—उत्तर दिशा से।

जब असुर उनका पीछा करने लगा, तो शिवजी भय से काँपते हुए उत्तर में स्थित अपने निवास से तेजी से भागने लगे। जहाँ तक पृथ्वी, आकाश तथा ब्रह्माण्ड के छोर हैं, वहाँ तक वे दौते रहे।

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः ।

ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥ २५ ॥

यत्र नारायणः साक्षात्त्र्यासिनां परमो गतिः ।

शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अजानन्तः—न जानते हुए; प्रति-विधिम्—निराकरण; तूष्णीम्—मौन; आसन्—हो गये; सुर—देवताओं के; ईश्वराः—स्वामी; ततः—तब; वैकुण्ठम्—ईश्वर के धाम, वैकुण्ठ; अगमत्—गया; भास्वरम्—तेजवान; तमसः—अंधकार; परम्—परे; यत्र—जहाँ; नारायणः—नारायण; साक्षात्—प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर; त्र्यासिनाम्—सन्त्र्यासियों के; परमः—परमेश्वर; गतिः—लक्ष्य; शान्तानाम्—शान्त रहने वालों का; न्यस्त—विरक्त; दण्डानाम्—हिंसा के; यतः—जिससे; न आवर्तते—नहीं लौटता; गतः—जाकर।

बड़े बड़े देवता, यह न जानने से कि वर का निराकरण कैसे किया जाये, केवल मौन रह

सकते हैं। शिवजी समस्त अंधकार के परे वैकुण्ठ के तेजस्वी धाम पहुँचे, जहाँ साक्षात् भगवान् नारायण प्रकट होते हैं। यह धाम उन विरक्तों का गन्तव्य है, जिन्हें शान्ति प्राप्त हो चुकी है और जो अन्य प्राणियों के प्रति हिंसा छोड़ चुके हैं। वहाँ जाकर कोई फिर से नहीं लौटता।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार शिवजी श्वेतद्वीप में प्रविष्ट हुए, जो भौतिक ब्रह्माण्ड की सीमा के ही भीतर आध्यात्मिक जगत के विशेष चौकसी-स्थल के रूप में है। यहाँ पर दिव्य दुग्धसागर से घिरे सुन्दर श्वेतद्वीप में भगवान् विष्णु अनन्त-शेष की शय्या में शयन करते रहते हैं और सहायता की आवश्यकता पड़ने पर वे देवताओं को उपलब्ध होते हैं।

तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः ।

दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥ २७ ॥

मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् ।

अभिवादयामास च तं कुशपाणिर्विनीतवत् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; तथा—इस प्रकार; व्यसनम्—संकट को; दृष्ट्वा—देखकर; भगवान्—भगवान्; वृजिन—कष्ट को; अर्दनः—नष्ट करने वाले; दूरात्—दूर से; प्रत्युदियात्—(वृकासुर के) सामने आ गये; भूत्वा—बन कर; बटुकः—ब्रह्मचारी छात्र; योग-मायया—अपनी अन्तरंगा योगशक्ति से; मेखल—छात्र की पेटी; अजिन—मृगचर्म; दण्ड—डण्डा; अक्षैः—तथा जप-माला से युक्त; तेजसा—अपने तेज से; अग्निः इव—अग्नि की तरह; ज्वलन्—प्रकाश करते; अभिवादयाम् आस—आदरपूर्वक सत्कार किया; च—तथा; तम्—उसको; कुश-पाणिः—हाथ में कुशा लिए; विनीत-वत्—विनीत होकर।

अपने भक्तों के कष्टों को हरने वाले भगवान् ने दूर से ही देख लिया कि शिवजी संकट में हैं। अतएव अपनी योग-माया शक्ति से उन्होंने ब्रह्मचारी छात्र का रूप धारण कर लिया, जो उपयुक्त मेखला, मृगचर्म, दण्ड तथा जप-माला से युक्त था और वृकासुर के समक्ष आये। भगवान् की आभा अग्नि के समान चमचमा रही थी। अपने हाथ में कुशा घास पकड़े हुए, उन्होंने असुर का विनीत भाव से स्वागत किया।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने वेशधारी भगवान् नारायण के मुख से निकले इन शब्दों को उद्धृत किया है, “हम जो कि ब्रह्मवेत्ता हैं, उनके लिए सारे जीव आदर के पात्र हैं। और चूँकि तुम शकुनि के पुत्र हो, जो अत्यन्त ज्ञानी तथा तपस्वी था, अतएव मुझ जैसे युवक ब्रह्मचारी से सत्कार किये जाने के पात्र हो।”

श्रीभगवानुवाच

शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रान्तः किं दूरमागतः ।

क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्मायं सर्वकामधुक् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; शाकुनेय—हे शकुनि-पुत्र; भवान्—आप; व्यक्तम्—स्पष्टतः; श्रान्तः—थके हुए; किम्—किस कारण; दूरम्—दूर से; आगतः—आये हैं; क्षणम्—क्षण-भर के लिए; विश्रम्यताम्—कृपया आराम करें; पुंसः—पुरुष का; आत्मा—शरीर; अयम्—यह; सर्व—समस्त; काम—इच्छाएँ; धुक्—गाय के दूध के समान देते हुए।

भगवान् ने कहा : हे शकुनि-पुत्र, तुम थके लग रहे हो। तुम इतनी दूर क्यों आये हो? कुछ क्षण के लिए विश्राम कर लो। आखिर मनुष्य का शरीर ही सारी इच्छाओं को पूरा करने वाला है।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद भगवान् श्रीकृष्ण में टीका करते हैं, “इसके पूर्व कि असुर यह तर्क करे कि विश्राम करने की उसे फुरसत नहीं है, भगवान् उसे शरीर का महत्त्व बतलाने लगे और वह असुर आश्चस्त हो गया। कोई भी व्यक्ति, विशेष रूप से असुर, शरीर को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है।”

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो ।

भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; नः—हमारा; श्रवणाय—सुनने के लिए; अलम्—उपयुक्त; युष्मत्—तुम्हारा; व्यवसितम्—विचार; विभो—हे शक्तिशाली; भण्यताम्—कृपया बतलायें; प्रायशः—सामान्यतया; पुम्भिः—व्यक्तियों से; धृतैः—धारण किया हुआ; स्व—अपने; अर्थान्—प्रयोजन के लिए; समीहते—सम्पन्न करता है।

हे विभो, यदि आप हमें इस योग्य समझते हैं, तो हमें बतलाइये कि आप क्या करना चाहते हैं। सामान्यतया मनुष्य अन्यो से सहायता लेकर अपने कार्यों को सिद्ध करता है।

तात्पर्य : ईर्ष्यालु असुर भी अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए ब्राह्मण की शक्ति का लाभ उठाने से इनकार नहीं करेगा।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता पृष्ठो वचसामृतवर्षिणा ।

गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; पृष्ठः—पूछे जाने पर; वचसा—वाणी से; अमृत—अमृत; वर्षिणा—वर्षा करने वाली; गत—समाप्त; क्लमः—थकान; अब्रवीत्—कहा; तस्मै—उन्से; यथा—जिस तरह; पूर्वम्—पहले; अनुष्ठितम्—सम्पन्न किया हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह मधुर अमृत की वर्षा करने वाली वाणी में भगवान्

द्वारा प्रश्न किये जाने पर वृक को लगा कि उसकी थकावट मिट गई है। उसने भगवान् से अपने द्वारा की गई हर बात बतला दी।

श्रीभगवानुवाच

एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्धधीमहि ।

यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; एवम्—ऐसा; चेत्—यदि; तर्हि—तो; तत्—उसके; वाक्यम्—कथनों में; न—नहीं; वयम्—हम; श्रद्धधीमहि—विश्वास कर सकते हैं; यः—जो; दक्ष-शापात्—दक्ष प्रजापति के शाप से; पैशाच्यम्—पिशाचों के गुण; प्राप्तः—प्राप्त; प्रेत-पिशाच—प्रेतों तथा पिशाचों का; राट्—राजा।

भगवान् ने कहा : यदि ऐसा ही है, तो हम शिव के कहने पर विश्वास नहीं कर सकते। शिव तो प्रेतों तथा पिशाचों के वही स्वामी हैं, जिन्हें दक्ष ने एक मानव-भक्षी पिशाच बनने का शाप दिया था।

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ ।

तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; वः—तुम्हारा; तत्र—उसमें; विश्रम्भः—विश्वास; दानव-इन्द्र—हे असुरों में श्रेष्ठ; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरौ—गुरु की तरह; तर्हि—तो; अङ्ग—हे मित्र; आशु—अभी यहीं पर; स्व—अपने; शिरसि—सिर पर; हस्तम्—अपना हाथ; न्यस्य—रख कर; प्रतीयताम्—देख लो।

हे असुर-श्रेष्ठ, यदि उन पर तुम्हें विश्वास है, क्योंकि वे ब्रह्माण्ड के गुरु हैं, तो अविलम्ब तुम अपना हाथ अपने सिर पर रखो और देख लो कि क्या होता है।

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथञ्चिद्दानवर्षभ ।

तदैतं जह्यसद्वाचं न यद्वक्तानृतं पुनः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; असत्यम्—झूठ; वचः—शब्द; शम्भोः—शिव के; कथञ्चित्—किसी भी तरह; दानव-ऋषभ—हे दानव-श्रेष्ठ; तदा—तो; एतम्—उसको; जहि—मार डालो; असत्—असत्य; वाचम्—जिसके शब्द; न—नहीं; यत्—जिससे; वक्ता—बोल सके; अनृतम्—झूठ; पुनः—फिर।

हे दानव-श्रेष्ठ, यदि किसी तरह भगवान् शम्भु के शब्द असत्य सिद्ध होते हैं, तो उस झूठे का वध कर दो, जिससे वह दुबारा झूठ न बोल सके।

तात्पर्य : हो सकता है कि मारे जाने के बाद शिव में पुनः जीवित हो जाने की शक्ति हो, किन्तु

कम से कम वे फिर से झूठ नहीं बोल सकेंगे।

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः ।

भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्न्यधात् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; भगवतः—भगवान् के; चित्रैः—अद्भुत; वचोभिः—शब्दों से; सः—उसने (वृक); सु—अत्यन्त; पेशलैः—चतुर; भिन्न—मोहग्रस्त; धीः—उसका मन; विस्मृतः—भूल कर; शीर्ष्णि—सिर पर; स्व—अपना; हस्तम्—हाथ; कुमतिः—मूर्ख ने; न्यधात्—रख दिया।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस प्रकार भगवान् के मोहक चतुर शब्दों से मोहित होकर

मूर्ख वृक ने बिना समझे कि वह क्या कर रहा है, अपने सिर पर अपना हाथ रख दिया।

अथापतद् भिन्नशिराः वज्राहत इव क्षणात् ।

जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्विवि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अथ—तब; अपतत्—गिर पड़ा; भिन्न—छिन्न-भिन्न हुआ; शिराः—उसका सिर; वज्र—वज्र से; आहतः—चोट खाया; इव—मानो; क्षणात्—क्षण-भर में; जय—“जय हो”; शब्दः—ध्वनि; नमः—“नमस्कार है”; शब्दः—ध्वनि; साधु—“साधु साधु”; शब्दः—ध्वनि; अभवत्—हुई; दिवि—आकाश में।

उसका सिर तत्क्षण विदीर्ण हो गया, मानो वज्र द्वारा प्रहार हुआ हो और वह असुर भूमि पर गिर कर मर गया। आकाश से “जय हो,” “नमस्कार है” तथा “साधु साधु” जैसी ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं।

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे ।

देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः सङ्कटाच्छिवः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

मुमुचुः—कराई; पुष्प—फूलों की; वर्षाणि—वर्षा; हते—मारे जाने पर; पापे—पापी; वृक-असुरे—वृकासुर के; देव-ऋषि—दैवी ऋषियों; पितृ—पुरखों; गन्धर्वाः—तथा स्वर्ग के गवैयों ने; मोचितः—छुटकारा पाये हुए; सङ्कटात्—संकट से; शिवः—शिव।

पापी वृकासुर के मारे जाने पर उत्सव मनाने के लिए दैवी ऋषियों, पितरों तथा गन्धर्वों ने फूलों की वर्षा की। अब शिवजी खतरे से बाहर थे।

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः ।

अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥ ३८ ॥

हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः ।
क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मुक्तम्—मुक्त हुए; गिरिशम्—शिव को; अभ्याह—सम्बोधित किया; भगवान् पुरुष-उत्तमः—भगवान् (नारायण) ने; अहो—ओह; देव—हे स्वामी; महा-देव—शिव; पापः—पापी; अयम्—यह व्यक्ति; स्वेन—अपने; पाप्मना—पापों से; हतः—मारा गया; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; महत्सु—बड़े सन्तों के प्रति; ईश—हे स्वामी; जन्तुः—जीव; वै—निस्सन्देह; कृत—किया गया; किल्बिषः—अपराध; क्षेमी—भाग्यवान्; स्यात्—हो सकता है; किम् उ—क्या कहा जा सकता है, और भी; विश्व—ब्रह्माण्ड के; ईशे—ईश्वर (आप) के विरुद्ध; कृत-आगस्कः—अपराध करके; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरौ—गुरु के ।

तब पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने खतरे से बाहर हुए गिरिश को सम्बोधित किया, “हे महादेव, मेरे प्रभु, देखें न, यह दुष्ट व्यक्ति अपने ही पाप के फलों से किस तरह मारा गया है। निस्सन्देह, यदि कोई जीव महान् सन्तों का अपमान करता है, तो वह सौभाग्य की आशा कैसे कर सकता है? ब्रह्माण्ड के स्वामी तथा गुरु के प्रति अपराध करने के विषय में, तो कहा ही क्या जा सकता है।”

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् विष्णु का यह कथन मीठी फटकार के रूप में है, “हे असीम दृष्टि के स्वामी! हे विशुद्ध बुद्धि वाले! दुष्ट असुरों को इस तरह वर नहीं देने चाहिए। आप तो मार डाले गये होते! किन्तु आप तो इस बेचारे को बचाने में लगे थे और इसकी परवाह ही नहीं की कि फलस्वरूप आपको क्या हो सकता है।” इस तरह आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि भगवान् नारायण की यह मीठी फटकार शिवजी की अद्वितीय दयालुता को भी प्रकाश में लाती है।

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः

परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ।

गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा

विमुच्यते संसृतिभिस्तथारिभिः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

यः—जो भी; एवम्—इस प्रकार; अव्याकृत—अचिन्त्य; शक्ति—शक्तियों के; उदन्वतः—सागर; परस्य—परम की; साक्षात्—स्वयं प्रकट; परम-आत्मनः—परमात्मा; हरेः—भगवान् हरि के; गिरित्र—शिव के; मोक्षम्—बचाव को; कथयेत्—सुनाता है; शृणोति—सुनता है; वा—अथवा; विमुच्यते—छूट जाता है; संसृतिभिः—बारम्बार जन्म तथा मृत्यु से; तथा—भी; अरिभिः—शत्रुओं से ।

भगवान् हरि साक्षात् प्रकट परम सत्य, परमात्मा तथा अचिन्त्य शक्तियों के असीम सागर हैं। जो कोई भी, उनके द्वारा शिव को बचाने की इस लीला को कहेगा या सुनेगा, वह सारे शत्रुओं

तथा जन्म-मृत्यु के आवागमन से मुक्त हो जायेगा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इस अध्याय का समापन इस कथन के साथ करते हैं—

भक्तसंकटमालोक्य कृपापूर्णहृदम्बुजः ।

गिरित्रं चित्रवाक्यात्तु मोक्षयामास केशवः ॥

“जब भगवान् केशव ने देखा कि उनके भक्त पर संकट आया है, तो उनका कमलवत् हृदय अनुकम्पा से भर गया। इस प्रकार उन्होंने शिव को उनके वाक्पटु शब्दों के परिणामों से उबार लिया।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “वृकासुर से शिवजी की रक्षा” नामक अष्टासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।